संपादक की कलम से...

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य

प्रा. दामोदर मोरे

जोशी कला एवं बेड़ेकर वाणिज्य महाविद्यालय ठाणे द्वारा आयोजित 'स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य' इस विषय पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी के पहले इसी विषयपर २२ अगस्त २००८ तथा २० नवम्बर २००८ को दो कार्यशालाओं का आयोजन किया गया। पहली कार्यशाला में १२ तो दूसरी कार्यशाला में १६ प्रपत्र पढ़े गये। इन कार्यशालाओं में ६ सत्राध्यक्षों ने अपने विचार रखे। २० नवम्बर को हुई कार्यशाला की यह विशेषता थी कि इस में तृतीय वर्ष कला की ४ छात्राओं ने अपने प्रपत्र पढ़े, जिन्हें सुनकर बाहर से आये हुए सत्राध्यक्षों ने उनकी सराहना की।

१६ और १७ जनवरी २००९ को संपन्न हो रही इस संगोष्ठी की और इसके पूर्व आयोजित दो कार्यशालाओं की और एक विशेषता यह है कि महाविद्यालय के संस्कृत, मराठी, हिंदी एवं अंग्रेजी विभागों द्वारा इसका आयोजन किया गया। और इस संगोष्ठी में भी उपरोक्त चार भाषाओं में प्रपत्र पढ़े जा रहे हैं। चार भाषाओं का यह संगम हमें राष्ट्रीय एकता का एहसास दिलाता है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इस संगोष्ठी को प्रायोजित किया; मैं उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

हमेशा हमें सफलता दिखायी देती है लेकिन उसके पिछे जो हाथ होते हैं वे दिखायी नहीं देते। इस संगोष्ठी की सफलता के पिछे विद्या प्रसारक मण्डल के कार्याध्यक्ष हमारे प्रेरणास्थान आदरणीय डॉ. विजय बेड़ेकर एवं महाविद्यालय की प्राचार्या डॉ. शकुंतला सिंह है। उनके प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

इस संगोष्ठी में अ.भा.मराठी साहित्य सम्मेलन के पूर्वाध्यक्ष मा. अरूण साधू, हिंदी साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर एवं हिंदी आलोचना के आलोकस्तंभ डॉ. शिवकुमार मिश्र, ख्यातकिर्त कवयित्री एवं 'युद्धरत आम आदमी' की संपादक रमणिका गुप्ता, आलोचक एवं दलित साहित्य के चिंतक, विचारक डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे, कामगार चेतना के मूर्धन्य कवि नारायण सुर्वे, आलोक भट्टाचार्य की उपस्थिति से संगोष्ठी का माहौल महक उठा है। उनके एवं सभी सत्राध्यक्ष तथा प्रपत्र पाठकों के प्रति मैं आभार प्रकट करता हूँ।

संगोष्ठी की सफलता के लिए उपप्राचार्य डॉ. पद्मिनी मूर्ति, उपप्राचार्य लीला भट, उपप्राचार्य बेके, पर्यवेक्षक गौरी तिरमारे, प्रकाश बच्छाव, ग्रंथपाल प्रा. नारायण बारसे, श्री. प्रकाश शेंबेकर, सभी समितियों के अध्यक्ष एवं सदस्य, सभी प्राध्यापक एवं शिक्षकेतर कर्मचारी तथा छात्र सभी ने अपना सहयोग दिया उसे मैं भूल नहीं सकता, उन सभी का मैं आभारी हूँ। 'परफेक्ट प्रिंट' के श्री. विलास सांगुर्डेकर जी का सहयोग तो अभिनंदनीय है। हिंदी के विभागाध्यक्ष प्रा. अनिल ढवले, अंग्रेजी के विभागाध्यक्ष प्रा. प्रमोद खराटे, संस्कृत विभागाध्यक्षा प्रा.मुग्धा कुलकर्णी ने संगोष्ठी सफल बनाने में तहे दिल से कड़ी मेहनत की, उनको मैं संगोष्ठी की सफलता हे लिए बधाई देता हूँ। इस संगोष्ठी में एवं सभी आलेखों की छपाई में यदि कुछ त्रुटियाँ रह गई होगी या किसी का आभार प्रकट करना बाकी रह गया हो तो उसके लिए संगोष्ठी का समन्वयक होने के नाते मैं आपका क्षमाप्रार्थी हूँ।

इस संगोष्ठी के लिए 'स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य' यही विषय क्यों रखा इसके बारे में एक समन्वयक होने के नाते मेरा अभिमत प्रकट करना मेरा दायित्व है।

समाज, साहित्य एवं समय का एक दूसरे से गहरा रिश्ता है। साहित्य अपने समय की पहचान होती है। समाज समय के साथ परिवर्तित होना चाहिए। समाज और समय के प्रति लेखक को हमेशा सजग रहना चाहिए। लेकिन लेखक समाज और समय के प्रति हमेशा सजग रहता दिखायी नहीं देता। समाज में भौतिक परिवर्तन तो दिखायी देता है लेकिन मानसिक तौरपर समाज कितना बदलता है यह महत्त्वपूर्ण बात है।

उत्तरशतीं के भारतीय साहित्य में जो परिवर्तन की झलक दिखायी देती है, जो साहित्य प्रवाह दिखायी देते हैं वे उससे पहले क्यों नही उभरे? इस संदर्भ में मुझे कुछ काव्यपंक्तियाँ याद आ रही हैं। कवि का नाम मैं भूल गया हूँ लेकिन काव्यपंक्तियां ऐसी हैः

''अब तो इस पूरे तालाब का पानी
बदल दो यारे,
यहाँ कँवल के फूल
कुम्हलाने लगे हैं।''

यह सच है कि पानी अपना मार्ग ढूँढ लेता है। लेकिन पानी तालाब में हो तो मार्ग कैसे ढूँड़ेगा? वहाँ तो पानी प्रवाहित होने के लिए बाँध को फोडने की जरूरत होती है। समाज एवं साहित्य तालाब जैसा ही यथास्थितिवादी हुआ था। तालाब का पानी बदलने की जरूरत महसूस होने लगी थी। हमें मिली आज़ादी ने वह काम कर दिया। भारतीय संविधान के 'प्रियेंबल' में स्थित मूल्यों की रोशनी ने समाज का दिल और दिमाग़ जगमगाया। शिक्षा देहातों तक जाने से ज्ञान का उजाला सभी को मिला। सावित्रीबाई फुले , जोतिराव फुले, महर्षि कर्वे, कार्ल मार्क्स, महात्मा गांधी, बाबासाहेब डॉ. भीमराव आम्बेडकर इन महापुरुषों के विचारों की रोशनी ने समाज को परिवर्तनशील बना दिया।

दर्शन साहित्य की रीढ़ होती है। इन महापुरुषों के विचारों में ऐसा सामर्थ्य था, जिसके कारण अज्ञान एवम् अंधविश्वासोमें सदियों से कुम्हलाऐं हुए प्रज्ञा और प्रतिभा के फूल खिलने लगे। महकने लगे। उसी की उपज है-स्वतंत्रता के बाद आये स्त्री-विमर्श, दलित साहित्य विमर्श एवं आदिवासी साहित्य विमर्श।

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्यपर आधुनिकतावाद, हिंदुत्ववाद, गांधीवाद, मार्क्सवाद और आम्बेडकरवाद का प्रभाव हैं। विशेषकर आम्बेडकरवादने भारतीय साहित्य का भूगोल बदल दिया और यह साहित्य लोककेन्द्री बन रहा है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य का स्वर बहुस्वरान्वेषी है। भारतीय संविधान के मूल्यों की विचारधारा भारतीय साहित्य का लोकतंत्रीकरण कर रही है। दलित साहित्य न केवल मराठी या हिंदी में बल्कि गुजराती, तामिल, तेलगू, मलयालम, राजस्थानी एवं पंजाबी में लिखा जा रहा है।

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य का महत्त्वपूर्ण बिंदू है स्त्री-विमर्श। स्वतंत्रता के बाद भी स्त्री के साथ 'एक भोगवस्तू' के तौर पर बर्ताव किया जाता है। मनुष्य के रूप में आज भी पूरी तरह पुरुष संस्कृति ने उसे स्वीकारा नहीं है। इस संदर्भ में हिंदी साहित्य की मूर्धन्य लेखिका प्रभा खेतान का मन्तव्य सटीक है। उनका कहना है, ''स्त्री को तो मनुष्य की श्रेणी में भी नहीं रखा जाता। पालतू

कुत्तेकी तरह उसके गले में मंगलसूत्र की डोर बाँध दी जाती है।'' विज्ञापन हो या साहित्य उस में स्त्री का 'देह' ही केंद्र रहा है। 'शेक्सपिअर ने कहा है - Frailty, thy name is women निर्बलता तुम्हारा नाम नारी' स्त्री की घूटन को, उसकी छटपटाहट को, उसकी स्वतंत्रता की प्यास एवं मुक्ति की आकांक्षा को, उसकी अपनी अस्मिता को, स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य में मन्नु भंडारी, प्रभा खेतान, चित्रा मुद्गल, मृदुला गर्ग, कृष्णा सोबती, मैत्रेयी पुष्पा, राजी सेठ जैसी लेखिकाओं ने वाणी दी हैं।

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य का दूसरा महत्त्वपूर्ण बिन्दु है दलित साहित्य। मराठी से प्रारंभ हुआ दलित साहित्य उत्तरशर्ती के आखरी चरण से भारत की कई भाषाओं में महक रहा है। हिन्दी दलित साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर, सत्यान्वेषी आलोचक कंवल भारती इस बारे में 'दलित साहित्य की अवधारणा' इस किताब में लिखते हैं, ''1975 के बाद दलित चेतना की जो धारा विकसित हुई, वह इसलिये विशिष्ट है क्योंकि उसने हिंदी जगत में अपनी पृथक और विशिष्ट पहिचान बनाने का प्रयास किया है। यह प्रयास अभिनव है, क्योंकि अभी तक ऐसा प्रयास किसी युग में नहीं किया गया था। एक पृथक धारा के रूप में हिंदी दलित साहित्य इसी युग में अस्तित्व में आया, बल्कि उसे परिभाषित भी इसी काल में किया गया। यह धारा समग्र रूपसे आम्बेडकर दर्शन से विकसित हुई, और यह दर्शन उसका मूलाधार है। आम्बेडकर दर्शन में दलित मुक्ति की अवधारणा की अभिव्यंजना ही वर्तमान हिंदी दलित साहित्य की प्रतिबद्धता है। इसने नये सौंदर्यशास्त्र की स्थापना की जो स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के सिद्धान्तों पर आधारित है।''

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य का तीसरा एक बिन्दू है जो अभी उभर रहा है वो है- आदिवासी साहित्य। केवल मराठी में ही नहीं हिंदी में और संताली भाषा में भी उसका निर्माण हो रहा है। नगपुरिया, भिलोरी, मुण्डारी, अरूणांचली, गुजराती, बिरहोर, लम्बाडी में भी यह साहित्य लिखा जा रहा है। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श एवं आदिवासी साहित्य विमर्श का एकही संघर्ष सूत्र दिखायी देता है वह है, 'हमें मनुष्य के रूप में स्वीकार करो। हमारे साथ पशुता का नहीं मनुष्य के जैसा बर्ताव करो।' संताली भाषा में लिखनेवाला एक सशक्त स्वर है निर्मला पुतुल - उनकी कविता में 'स्त्री' होने का और आदिवासी होने का दर्द ठीबक रहा है। उनकी काव्य पंक्तियाँ आदिवासी के तीर की तरह लक्ष्य का भेद करती है। 'क्या तुम जानते हो?' यह उनकी स्त्री विमर्श की कवितामें दहकते अंगारे है। वह लिखती हैं -

''• तन के भूगोल से परे
एक स्त्री के मन की गाँठे खोलकर
कभी पढ़ा है तुमने उसके भीतर का इतिहास?

• पढ़ा है कभी उसकी चुप्पी की दहलीज पर बैठे
शब्दों की प्रतिक्षा में उसके चेहरे को?

• बता सकते हो तुम
एक स्त्री को स्त्री दृष्टि से देखते
उसके स्त्रीत्व की परिभाषा?

• अगर नहीं!
तो फिर क्या जानते हो तुम
रसोई और बिस्तर के गणित से परे

एक स्त्री के बारे में''

(युध्दरत आम आदमी - २००१)

आदिवासी चेतना कितनी गहराई से स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य में अभिव्यंजित हो रही है उसका उदाहरण मराठी में भुजंग मेश्राम और हिन्दी में निर्मला पुतुल की कविताओं से प्रातिनिधिक रूप में दिया जा सकता है। निर्मला जी अपनी कविता 'चुड़का सोरेन से' में कहती हैं। :-

''किसके शिकार में रोज जाते हो जंगल?
किसके?
शाम घिरते ही अपनी बस्तियों में उतर आए
इन खरतनाक शहरी जानवरों को पहचानो चुड़का सोरेन
पहचानो!!
पाँव पसारे जो तुम्हारे ही घर में घुस कर बैठें हैं।
तुम्हारे भोलेपन की ओट में
इस पेचदार दुनिया में रहते
तुम इतने सीधे क्यों हो चुड़का सोरेन??''

(आदिवासी स्वर और नई शताब्दी - संपादक रमणिका गुप्ता - पृ. ११९)

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य में ख्रिस्ती मराठी साहित्य है, मुस्लिम मराठी साहित्य है। महानगरीय संवेदना है। महानगरीय संवेदना में हमें स्वार्थपरता, संकुचितता, आदमी - आदमी में पड़ रही दरार, परिवार में बढ़ती दूरियाँ, बिखरते रिश्ते इनका एहसास होता है। महानगरीय जीवन की जटिलता को, उसके विविध आयामों को मराठी, हिंदी साहित्य अभिव्यंजित कर रहा है। मराठी में ग्रामीण साहित्य ने उत्तर आधुनिकता में ही अपनी पहचान बना ली है। हिन्दी में उसे ही हम आँचलिक साहित्य कहते हैं। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य में फणीश्वरनाथ 'रेणू' का ''मैला आँचल'' उपन्यास हिन्दी आँचलिक साहित्य में एक महत्वपूर्ण पड़ाव है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में देश के विभाजन की त्रासदी, भारतपर चीन का आक्रमण, सांप्रदायिकता, आपतकाल, बेरोजगारी, आतंकवाद, नीजीकरण, भूमंडलीकरण, बाजारवाद यह सभी समस्याओं का साया स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य पर पड़ा है। हमारा बहोतसा आधुनिक साहित्य और आलोचना विदेशों से आयात, या उससे प्रभावित है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य में हमें इस मिट्टी की महक आती है। भारतीयत्व की खुशबू आती है। मनुष्यत्व के हिफ़ाजत का एहसास होता है। लेखक समाज का सजग प्रहरी होता है। वो अपनी साहित्य कृतियों में अपने विचारों के, मूल्यों के ऐसे बीज बोये, जिस से हमारे प्यारे सारे जहाँ से अच्छा भारत देश की एकता और अखंडता कायम रहे। जय भारत।

❑❑❑